Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

अग्निपुराण में राजधर्म एक अनुशीलन

पंकज तिवारी
शोध छात्र, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय झाँसी (सम्बद्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,झाँसी)
शोध केन्द्र–नेहरू महाविद्यालय ललितपुर उ0प्र0 (सम्बद्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,झाँसी)

Article Info
Volume 4 Issue 1
Page Number: 141-147

Publication Issue :
January-February-2021

Article History
Accepted : 02 Feb 2021
Published :15 Feb 2021

सारांश– अग्निपुराण को यदि समस्त भारतीय विद्याओं का विश्वकोश कहें तो किसी प्रकार अत्युक्ति न होगी। इन पुराणों का उद्देश्य जनसाधारण में ज्ञातव्य विद्याओं का प्रचार करना भी था। इसका पूरा परिचय हमें इस पुराण के अनुशीलन में मिलता है इस पुराण के 383 अध्यायों में नाना प्रकार के विषयों का सन्निवेश कम आश्चर्य का विषय नहीं है। योगशास्त्र के यम, नियम आदि आठों अंगों का वर्णन संक्षेप में बड़ा ही सुन्दर है। अन्त में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का सार संकलन है। इस पुराण में सब विद्याओं का प्रदर्शन (परिचय) कराया गया है।गंगा तथा प्रयाग आदि तीर्थों की महिमा का वर्णन किया गया है।मन्वन्तर आदि का वर्णन तथा वर्ण और आश्रम आदि के धर्मों का प्रतिपादन किया गया है।

मुख्यशब्द–अग्निपुराण, योगशास्त्र, पुराण, शाक्त आगम, भुवनकोश, ज्योतिश्चक्र, वैद्यक, निघण्टु, समुन्नत राष्ट्र, समुज्ज्वल, बुद्धि अक्षुद्र।

अग्निपुराण को यदि समस्त भारतीय विद्याओं का विश्वकोश कहें तो किसी प्रकार अत्युक्ति न होगी। इन पुराणों का उद्देश्य जनसाधारण में ज्ञातव्य विद्याओं का प्रचार करना भी था। इसका पूरा परिचय हमें इस पुराण के अनुशीलन में मिलता है इस पुराण के 383 अध्यायों में नाना प्रकार के विषयों का सन्निवेश कम आश्चर्य का विषय नहीं है। योगशास्त्र के यम, नियम आदि आठों अंगों का वर्णन संक्षेप में बड़ा ही सुन्दर है। अन्त में अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्तों का सार संकलन है। एक अध्याय में गीता का भी सारांश एकत्रित किया गया है। इस प्रकार इस पुराण के अनुशीलन से समस्त ज्ञान–विज्ञान का परिचय मिलता है। इसलिए इस पुराण का यह दावा सच्चा ही प्रतीत होता है।

इस पुराण में सब विद्याओं का प्रदर्शन (परिचय) कराया गया है। भगवान् के मत्स्य आदि सम्पूर्ण अवतार, गीता और रामायण का भी इसमें वर्णन है। हरिवंश और महाभारत का भी परिचय है। नौ प्रकार की सृष्टि का भी दिग्दर्शन कराया गया है। वैष्णव आगम का भी गान किया गया है। देवताओं की स्थापना के साथ ही दीक्षा तथा पूजा का उल्लेख किया गया है। पवित्रारोहण आदि की विधि, प्रतिमा के लक्षण आदि तथा मन्दिर के लक्षण आदि का वर्णन है। साथ ही भोग और मोक्ष देने वाले मन्त्रों का उल्लेख है। शैव–आगम और उनके प्रयोजन शाक्त आगम, सूर्य सम्बन्धी आगम मण्डल, वास्तु और भाँति–भाँति के मन्त्रों का वर्णन है। प्रतिसर्ग का परिचय कराया गया है। ब्रह्माण्ड मण्डल तथा भुवनकोश का भी वर्णन है। द्वीप,

Copyright : © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

वर्ष आदि और नदियों का भी उल्लेख है। गंगा तथा प्रयाग आदि तीर्थों की महिमा का वर्णन किया गया है। ज्योतिश्चक्र (नक्षत्र–मण्डल) ज्योतिष आदि विद्या तथा युद्ध जयार्णव का भी निरूपण है। मन्वन्तर आदि का वर्णन तथा वर्ण और आश्रम आदि के धर्मों का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही अशौच, द्रव्यशुद्धि तथा प्रायश्चित का भी ज्ञान कराया गया है।

आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन्सर्वविद्याः प्रदर्शिताः
सर्वे मत्स्यावताराद्या गीता रामायणं त्विह।
हरिवंशो भारतं च नवसर्गाः प्रदर्शिताः।
आगमो वैष्णवो गीतः पूजा दीक्षा प्रतिष्ठया।
पवित्रारोहणादीनि प्रतिमालक्षणादिकम्।
प्रासादलक्षणाद्यं च मन्त्रा वै भुक्तिमुक्तिदाः।।
शैवागमस्तदर्थश्च शाक्तेयः सौर एव च।
मण्डलानि च वास्तुश्च मन्त्राणि विविधानि च।।
प्रतिसर्गश्चानुगीतो ब्रह्माण्डपरिमण्डलम्।
द्वीपो भुवनकोषश्च द्वीपवर्षादिनिम्नगाः।।
गयागङ्गाप्रयागादितीर्थमाहात्म्यमीरितम्।
ज्योतिश्चक्रं ज्योतिषादि गीतो युद्धजयार्णवः।।
मन्वन्तरादयो गीता धर्मा वर्णादिकस्य च।
अशौचं द्रव्यशुद्धिश्च प्रायश्चित्तं प्रदर्शितम्।।[1]

राजधर्म दानधर्म भाँति–भाँति के व्रत, व्यवहार, शान्ति तथा ऋग्वेद आदि के विधान का भी वर्णन है। सूर्यवंश, सोमवंश, धनुर्वेद, वैद्यक, गान्धर्व वेद, अर्थशास्त्र, मीमांश, न्यायविस्तार, पुराण संख्या, पुराण महात्म्य, छन्द, व्याकरण, अलंकार, निघण्टु, शिक्षा और कल्प आदि का भी इसमें निरूपण किया गया है।[1]

राजधर्मा दानधर्मा व्रतानि विविधानि च।
व्यवहाराः शान्तयश्च ऋग्वेदादिविधानकम्।।
सूर्यवंशः सोमवंशा धनुर्वेदश्च वैद्यकम्।
गान्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं मीमांसान्यायविस्तरः।।
पुराणसंख्यामाहात्यं छन्दो व्याकरणं स्मश्तम्।
अलंकारो निघण्टुश्च शिक्षाकल्प इहोदितः।।

सम्पूर्ण लोकों का हित करने के लिए अग्निदेव ने इसका संक्षेप में वर्णन किया है। शैनकादि मुनियों! आप इस सम्पूर्ण पुराण को ब्रह्ममय ही समझें। जो इसे सुनता या सुनाता, पढ़ता, पढ़ाता, लिखाता या लिखवाता तथा इसका पूजन और कीर्तन करता है, वह परम शुद्ध हो। सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करके कुलसहित स्वर्ग को जाता है।[2]

नैमित्तिकः प्राकृतिको लय आत्यन्तिकः स्मृतः।
वेदान्तं ब्रह्मविज्ञानं योगी ह्याष्टांङ्ग ईरितः।।
स्त्रोत्रं पुराणमाहात्म्यं विद्या ह्याष्टादश स्मृताः।

---

[1] अग्निपुराण के अध्याय 383 के 62–66 तक
[2] अग्निपुराण के अध्याय 383 के 62–66 तक

ऋग्वेदाद्याः परा ह्यात्रपरा विद्याऽक्षरं परम्।।
सप्रपचं निष्प्रपचं ब्रह्मणो रूपमीरितम्।
इदं पंचदशसाहस्त्रं शतकोटिप्रविस्तरम्।।
देवलोके दैवतैश्च पुराणं पठ्यते सदा।
लोकानां हितकामेन संक्षिप्योद्गीतमग्निना।
सर्वब्रह्मोति जानीध्वं मुनयः शौनकादयः।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वाऽपि यः पठेत्पाठयेदपि।

राजधर्म में प्रमुख विषय

पुराणों में राजधर्म का विवरण अनेक स्थलों पर बहुशः उपलब्ध है। राजा की उत्पत्ति प्राचीन काल में क्यों हुई ? उसके सहायक कितने अंग और उपांग होते हैं? साम, दाम, दण्ड और भेद राजा के ये चार मुख्य धर्म कब उपयोग में लाये जाते हैं? आदि प्रश्नों का समुचित समाधान पुराणों में किया गया है। मत्स्यपुराण में यह विषय संक्षेप में विवृत है। राजकुमार की शिक्षा दीक्षा किस प्रकार की होनी चाहिए, इसका विस्तृत विवरण यहां दिया गया है। राजा के सात प्रसिद्ध अंग यहां भी निर्दिष्ट हैं—स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष तथा मित्र (सहायक राजागण)। राजा के साथ विभिन्न देशों के साथ किस प्रकार का न्याय उचित है। इस विषय का सुन्दर वर्णन भी यहाँ एक पूरे अध्याय में उपलब्ध है। अग्निपुराण में भी यह विषय विस्तार से विवृत है। वक्ता है पुष्कर, जो विष्णुधर्मोत्तर के साध्य परतथा बोधव्य है परशुराम। यही पुष्कर नीति विष्णुधर्मोत्तर के कई अध्यायों में वर्णित है।[1]वक्ता तथा बोधव्य दोनों ही वे ही हैं, जैसे अग्निपुराण में निबन्धकारों ने अपने—अपने निबन्धों में अग्निपुराणस्थ इन प्रकस्थों के अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है। अग्निपुराण के कई अध्यायों में राम के द्वारा लक्ष्मण जी को प्रतिपादित नीति का विवेचन है। यहाँ राजधर्म का ही विशेष रूप से वर्णन है। यह रामनीति कौटिल्य के अर्थशास्त्र का बहुशः अनुसरण करती है। राम के द्वारा प्रतिपादित होने पर भी इसमें उदात्तता तथा महनीयता का नितान्त अभाव है जिन्हें हम राम के साथ सम्बद्ध मानते आते हैं। तथ्य यह है कि यह कामन्दकीय नीति का सार संकलन प्रस्तुत करता है जो अग्निपुराण की संग्राहक शैली के साथ पूर्ण सामंजस्य रखता है। गरुडपुराण[2] के कई अध्यायों से नीतिसार नामक उपन्यस्त प्रकरण इसी विषय से भी सम्बन्ध रखता है। इसमें धर्म, अर्थ तथा काम अर्थात् पुरुषार्थ से सम्बद्ध फुटकर श्लोकों का संग्रह तो है ही साथ ही साथ राजधर्म तथा राजतंत्र से सम्बद्ध श्लोक भी उपलब्ध होते हैं। इन नीतिसार प्रकरण के श्लोक अन्यान्य पुराणों तथा सुभाषित ग्रन्थों में अविकल अथवा किंचित पाठ—भेद के साथ यहां उद्धृत किये गये हैं। नीतिसार प्रकरण से अनेक श्लोक गरुड़पुराण का नाम लेकर 'राजनीतिप्रकाश' से उद्धृत किये गये हैं।

राजनीतिविषयक वर्णन मत्स्य, अग्नि तथा गरुड़ के अतिरिक्त मार्कण्डेय जैसे पुराण में तथा विष्णुधर्मोत्तर जैसे उपपुराणों में भी प्राप्त होते हैं। इन अध्यायों के परिशीलन से पौराणिक राजधर्म का स्वरूप भली भाँति अभिव्यक्त होता है, जो महाभारत आदि ग्रन्थों में प्रतिपादित राजनीति से भिन्न नहीं है। राजा के विषय में मत्स्यपुराण एक बड़े पते की बात कहलाता है[6]—

इसका तात्पर्य यह है कि कृपण, अनाथ, वृद्ध तथा विधवाओं के योगक्षेम तथा वृत्ति का प्रबन्ध करना राजा का महनीय धर्म होना चाहिए। यह श्लोक महाभारत के एक श्लोक की ओर संकेत करता है। जिसमें नारद जी ने युधिष्ठिर से अनाथ, अन्ध तथा अंगहीन लोगों की वृत्ति नियत करने का उपदेश दिया है[7]—

इस प्रकार राज्य की जिसमें वृद्धों, अनाथों, लूले–लंगड़ों की वृत्ति का प्रबन्ध होता है, जिससे वे भी संसार में जीवन–निर्वाह करते हैं, आजकल की भाषा में 'वेलफेयर स्टेट' अर्थात् कल्याण राष्ट्र कहते हैं। यह आजकल के नितान्त समुन्नत राष्ट्र के विकसित रूप का प्रतीक माना जाता है। आश्चर्य की बात है कि पुराणों ने राष्ट्र का यही समुज्जवल आदर्श प्रस्तुत कर रखा है जिसमें किसी दोष के कारण कोई भी प्राणी जीने के अधिकार से वंचित न रह जाय। गरुड़पुराण के नीतिसार का प्रकरणअपनी नैतिक शिक्षा के लिए बड़ा ही उपादेय तथा संग्रहणीय है। संस्कृत के नीतिवाक्यों के भीतर–शताब्दियों से संचित अनुभव अपनी अभिव्यक्ति पाता है। वाक्य तो होते हैं छोटे परन्तु उनके भीतर गम्भीर अर्थ भरा रहता है। बुढ़ापे के रूप पहचानने के लिए यह श्लोक कितना सारवान है–

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगश्च नारीणां वस्त्राणामातपो जरा।।

यहाँ चार पदार्थों के वार्धक्य या जीर्णता का विवरण है। और ये चारों बातें गम्भीर अनुभूति के ऊपर आश्रित हैं। इसी प्रकार गृहस्थ जीवन के आदर्श का संकेत इस छोटे से पद्य में कितनी रुचिरता में दिया गया है[8]–पुराणों में नीति के ये स्थल बड़े ही मार्मिक, सारवान् तथा उपादेय हैं।

राजा की रक्षा करने वाले प्रहरी हमेशा हाथ में तलवार लिये रहे। सारथि सेना आदि के विषय में पूरी जानकारी रखे। रसोइयों के अध्यक्ष को राजा का हितैषी और चतुर होने के साथ ही सदा रसोईघर में उपस्थित रहना चाहिए। राज्य सभा के सदस्य धर्म के ज्ञाता हों। लिखने का काम करने वाला पुरुष कई प्रकार के अक्षरों का ज्ञाता तथा हितैषी हो। द्वार रक्षा में नियुक्त पुरुष ऐसे होना चाहिए जो स्वामी के हित में संलग्न हो और इस बात की अच्छी तरह से जानकारी रखे कि महाराज कब–कब अपने पास बुलाते हैं।

राजा प्रजा का सम्बन्ध

राजा आमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल तथा मित्र–ये सातों राज्य के अंग हैं जो परस्पर उपकारक हुआ करते हैं। राजा के अंगों में राजा और मन्त्री के बाद राष्ट्रप्रधान एवं अर्थ का साधन है अतः उसका सदा पालन करना चाहिए (इन अंगों में पूर्व) अंग पर की अपेक्षा श्रेष्ठ है। कुलीनता सत्त्व (व्यसन और अभ्युदय में भी निर्विकार हरना) युवावस्था, शील, दाक्षिण्य, शीघ्रकारिता, अतिसंवादिता, सत्य, वृद्धसेवा, कृतज्ञता, दैवसम्पन्नता, बुद्धि अक्षुद्र, परिवारता, शक्यसामन्तता, दृढ़भक्तिता, दीर्घदर्शिता, उत्साह, शुद्धचित्तता, स्थूललक्षता, विनीतता और धार्मिकता–ये अच्छे अभिगामिक गुण हैं जो प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न, क्रूरतारहित गुणवान् पुरुषों का संग्रह करने वाले तथा पवित्र (शुद्ध) हो राजा का हितचिन्तक परिचारक बनाये। वाक्चतुर, प्रगल्भ, स्मरण शक्तिवाला, उत्साही बलवान् (इन्द्रियों को) वश में करनेवाला, दण्ड देने में निपुण, शिल्प आदि वेत्ता, दूसरों के लगाये हुए अभियोग को सहन कर सकने वाला, सभी दुष्टों को दण्ड दे सकने वाला, दूसरों के वृत्तान्त को जानने वाला, सन्धि विग्रह के रहस्य को समझने वाला, गूढ़ मन्त्रणा और प्रचार का ज्ञाता, देशकाल के विभाग का ज्ञान रखने वाला, सम्यक् प्रकार से धन प्राप्त करने वाला (दूसरों से) काम लेने वाला, पात्र को समझने वाला, क्रोध, लोभ, भय,द्रोह, दम्भ तथा चंचलता से रहित, दूसरों को कष्ट न देनेवाला, पिंशुनता, मात्सर्य, ईर्ष्या तथा असत्य से अलग रहने वाला वृद्धों के उपदेश से युक्त, मधुरदर्शी समर्थ, प्रियदर्शी और गुणानुरागी राजा श्रेष्ठ है। इस प्रकार राजा के आत्मसम्पत्ति सम्बन्धी गुण बताये गये हैं।

राजा का कर्तव्य

राज्य का प्रबन्ध इस प्रकार करना चाहिए। राजा को प्रत्येक गाँव का एक–एक अधिपति नियुक्त करना चाहिए। फिर दस–दस गाँवों का तथा सौ–सौ गाँवों का अध्यक्ष नियुक्त करे। सबके ऊपर एक ऐसे

पुरुष को नियुक्त करे जो समूचे राष्ट्र पर शासन कर सके। उन सबके कार्यों के अनुसार उनके लिए पृथक्–पृथक् भोग (भरणपोषण क लिए वेतन आदि) का विभाजन करना चाहिए तथा प्रतिदिन गुप्तचरों के द्वारा उनके कार्यों की देखभाल एवं परीक्षण करते रहना चाहिए। यदि गाँव में कोई दोष उत्पन्न हो, कोई मामला खड़ा हो तो ग्रामाधिपति को उसे शान्त करना चाहिए। यदि वह उस दोष को दूर करने में असमर्थ हो जाये तो दस गाँवों के अधिपति के पास जाकर सब बातें बतावे। पूरी रिपोर्ट सुनकर वह दस गाँव का स्वामी उस दोष को मिटाने का उपाय करे।[9]

क्योंकि यदि राज्य सुरक्षित रहता है तो राजा को उससे धन आदि का लाभ रहता है और धनवान् व्यक्ति को धर्म तथा सुख की प्राप्ति होती है। धन के बिना सभी क्रियाएं उसी प्रकार से नष्ट हो जाती हैं जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में नदियाँ। लोक में पतित और निर्धन में कोई अन्तर नहीं हुआ करते हैं, क्योंकि पतित से कोई (दान) लेना ही नहीं चाहता है और दरिद्र (कुछ) दे ही नहीं सकता है।[10]

धनहीन की स्त्री भी उसके वश में नहीं हुआ करती है। राष्ट्र को पीड़ा पहुँचाने वाला राजा चिरकाल तक नरक में निवास करता है। राजा को (प्रजा के प्रति) वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसे कि गर्भवती स्त्री अपने सुख की चिन्ता छोड़कर गर्भ के सुख का ध्यान रखती है।[11]

उस राजा के यज्ञ और तप से क्या लाभ, जिसकी प्रजा (ही) सुरक्षित नहीं है। जिसकी प्रजा सुखी है उसके लिए घर ही स्वर्ग है परन्तु जिसकी प्रजा दुःखी है उसके लिए घर ही नरक है, राजा, प्रजा के पुण्य और पाप दोनों षष्ठांश का भागी हुआ करता है। प्रजा की रक्षा करने से राजा को धर्मलाभ होता है और रक्षा न करने से उसे पाप का भागी होना पड़ता है।

अरक्षित प्रजा तो उन दुष्टों का भोजन मात्र बनकर रह जाती है। इसलिए राजा को दुष्टों का दमन कर देना चाहिए और शास्त्रानुकूल प्रजा से कर लेते रहना चाहिए और आधा भाग ब्राह्मणों को दान में दे देना चाहिए। श्रेष्ठ ब्राह्मणों को राजा से प्राप्त सम्पूर्ण निधि को लेकर उसके चौथे, आठवें तथा सोलहवें भाग को वर्णक्रम से सुपात्रों में न्यायपूर्वक बाँट देना चाहिए। मिथ्या बोलने वाले पर उसके धन का अष्टमांश दण्ड देना चाहिए। जिस धन का स्वामी नष्ट हो गया हो, उस धन को राजा की तीन वर्ष तक अपने पास धरोहर के रूप में रखना चाहिए।[12]

यदि उसके पहले ही उस धन का कोई अधिकारी राजा से आकर निवेदन करे कि यह मेरा धन है तथा उसका रूप, संख्या आदि चिन्ह पता बताये तो राजा को उसे वह धन लौटा देना चाहिए। जिस सम्पत्ति का अधिकारी बालक हो देखरेख राजा को तब तक करना चाहिए जब तक वह बालक योग्य न हो जाये अथवा उसका शैशव समाप्त न हो जाय।

इसी प्रकार जिस स्त्री का पुत्र छोटा हो अथवा जिसके कुल में कोई हो ही नहीं, जो विधवा हो, दुःखी हो और पतिव्रता हो उसकी भी रक्षा करनी चाािहए।[13]

धार्मिक राजा को चाहिए कि इन स्त्रियों के जीवनकाल में ही उनकी सम्पत्ति का अपहरण करने वालों को चोरों की भाँति दण्ड दे। सामान्यतः यदि उनका धन चोरों द्वारा चुरा लिया जाये तो राजा को अपनी ओर से उन्हें उतना धन देना चाहिए।[14]

घर में घर के ही किसी व्यक्ति के द्वारा चुरायी गयी वस्तु के लिए राजा को कुछ नहीं देना चाहिए। अये द्विज। अपने राष्ट्र की विक्रेय वस्तुओं का बीसवां भाग राजा को कर के रूप में लेना चाहिए। बाहर से आये हुए विक्रेय वस्तु के कर–निर्धारण में उनके निर्माण के मूल्य, आवागमन में टूट–फूट और व्यापारी के द्वारा प्राप्त लाभ को ध्यान में रखना चाहिए।[15]

किसी भी दशा में यह कर बीसवें भाग से अधिक नहीं होना चाहिए। इसमें विघ्न डाल देना चाहिए। स्त्रियों और सन्यासियों से कर नहीं लेना चाहिए।[16]

शुक धान्य और शिमि धान्य में व्यापार करने वाले सेवकों के द्वारा घाट या सीमा का कर छिपाये जाने पर राजा को उक्त धान्य का क्रमशः षष्ठांश और अष्टमांश ले लेना चाहिए। राजा को वन्य सम्पत्ति पर देशकाल के अनुरूप कर लगाना चाहिए। राजा को पशुधन और सुवर्ण पर क्रमशः पंचमाश और षष्ठांश कर लेना चाहिए।[17]

सुगन्धित पदार्थों औषधि, रस, पुष्प, मूल, फल, पत्र, शाक, तृण, बाँस, चर्म, बाँस के पात्र पर षष्ठांश कर लेना चाहिए। मधु मांस तथा घी का भी छठा भाग कर के रूप में लेना चाहिए। ब्राह्मणों से कर कभी नहीं लेना चाहिए चाहे कितनी भी आवश्यकता क्यों न हो। जिस राजा के राज्य में क्षत्रिय ब्राह्मण भूख से पीड़ित रहा करते हैं उसके राज्य में दुर्भिक्ष व्याधि तथा चोरों का उपद्रव हुआ करता है।[18]

क्षत्रिय ब्राह्मण का समाचार पाकर उनकी जीविका का प्रबन्ध कर देना चाहिए। राजा को ब्राह्मण की रक्षा उसी प्रकार से करनी चाहिए जिस प्रकार से पिता अपने औरस पुत्र की रक्षा करता है। राजा की देखरेख में जो क्षत्रिय ब्राह्मण प्रतिदिन धर्माचरण करते हैं उससे राजा की आयु बढ़ती है उसका धन बढ़ता है और उसका राष्ट्र भी बढ़ता है। कारीगरों को मास में राजा का एक कार्य (बिना पारिश्रमिक के) कर देना चाहिए और जो व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें अपने शरीर पर आश्रित रहना पड़ता है उन्हें केवल भोजन से राजा का कार्य करना चाहिए।[19]

राजा के कर्तव्यों का निर्देश

अब मैं दण्डनीति का प्रयोग बतलाऊँगा, जिससे राजा को उत्तम गति प्राप्त होती है। तीन जौ का एक 'कृष्णल' समझना चाहिए, पाँच कश्ष्णल का एक 'माष' होता है साठ कश्ष्णल (अथवा बारह माष) आधे कर्ष के बराबर बताये जाते हैं। सोलह माष का एक सुवर्ण माना जाता है। चार सुवर्ण का एक 'निष्क' और दस निष्कोका एक 'धरण' होता है तब ताँबे, चाँदी और सोने का मान बताया गया है।[20]

राज्य के अंगों में राजा और मंत्री के बाद राष्ट्र प्रधान एवं अर्थ का साधन है, अतः उसका सदा पालन करना चाहिए। (इन अंगों में पूर्व–पूर्व अंग पर की अपेक्षा श्रेष्ठ है, कुलीनता, सत्त्व (व्यसन और अभ्युदय में भी निर्विकार रहना), युवावस्था, शील (अच्छा स्वभाव), दाक्षिण्य, (सबके अनुकूल रहना या उदारता), शीघ्रकारिता (दीर्घ सूत्रता का अभाव), अविसंवादिता (वाक्छलका आश्रय लेकर परस्पर विरोधी बातें न करना), सत्य (मिथ्याभाषण न करना), वृद्धसेवा (विद्यावृद्धों की सेवा में रहना और उनकी बातों को मानना), कृतज्ञता (किसी के उपकार को न भुलाकर प्रत्युपकार के लिए उद्यत रहना), दैवसम्पन्नता (प्रबल पुरुषार्थ से दैव को भी अनुकूल बना लेना), बुद्धि (शुश्रूषा आदि आठ गुणों से युक्त प्रज्ञा), अक्षुद्रपरिवारता (दुष्ट परिजनों से युक्त न होना), शाक्यसामन्तता (आसपास के माण्डलिक राजाओं को वश में किये रहना), दृढ़ भक्तिता (सुदृढ़ अनुराग), दीर्घदर्शिता (दीर्घकाल में घटित होने वाली बातों का अनुमान कर लेना), उत्साह, शुद्धचित्तता, स्थूललक्षता (अत्यन्त मनस्वी होना) विनीतता (जितेन्द्रियता) और धार्मिकता–ये अच्छे आभिगामिक गुण हैं। जो सुप्रसिद्ध कुल में उत्पन्न, क्रूरतारहित, गुणवान पुरुषों का संग्रह करने वाले तथा पवित्र (शुद्ध) हों ऐसे लोगों को आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाला राजा अपना परिवार बनाये।[21]

राजा के मन्त्रियों को कुलीन, पवित्र, शूर, शास्त्रज्ञ, अनुरागी और दण्डनीति में कुशल होना चाहिए। राजा का मन्त्री वह हो सकता।जो सन्धि विग्रह आदि का ज्ञाता, कुल, शील तथा कला से युक्त, वाक्चतुर प्रगल्भ, उत्साही, सोच–समझकर काम करने वाला, बुद्धिमान्, स्तब्धता चपलता से वर्जित, मित्रवान, क्लेश को

सहन करने वाला, पवित्र, सत्य पराक्रम, धैर्य, स्थिरता, प्रभाव और आरोग्य से सम्पन्न, शिल्प–कुशल कार्य–निपुण, प्रज्ञावान्, धारणाशक्ति से युक्त, राजा के प्रति दृढ़–भक्ति रखने वाला और वैरियों को न बढ़ाने वाला हो।[22]

स्मरणशक्ति, आर्थोपार्जन में तत्परता, दूसरे का आशय समझना, दृढ़निश्चय, मन्त्रणा को गुप्त रखना ये सब मन्त्रियों के गुण कहे गये हैं। पराहित को (वेद) त्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) और दण्डनीति के ज्ञान में भी कुशल होना चाहिए। उन्हें अन्य ब्राह्मणों के साथ जो विद्या और चरित्र में उसके समान हो, अथर्ववेद में बतायी हुई विधि से (राजा के कल्याण के लिए) यज्ञ (शान्ति, पौष्टिक) कराना चाहिए।[23]

मन्त्रियों की सूझ–बूझ और उनकी शिल्प कुशलता की परीक्षा राजा को स्वयं कर लेनी चाहिए। किन्तु उसके कुल, स्थापना और स्वभाव का पता उन (मन्त्रियों) के स्वजनों से लगाना चाहिए। इसी प्रकार कार्यकुशलता, ज्ञान और सहिष्णुता–इन तीनों गुणों तथा प्रगल्भता और प्रेम की परीक्षा भी कर लेनी चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. अग्निपुराण के अध्याय 383 श्लोक 52–58
2. अग्निपुराण के अध्याय 383 के 62–66 तक
3. अग्निपुराण के अध्याय 383 के 62–66 तक
4. विष्णु धर्मपुराण 2/65–72, 145–165
5. गरुड़पुराण 108–115
6. मत्स्य पुराण 215/64
7. सभापर्व 5/124
8. गरुड़पुराण 108/23
9. अग्निपुराण 223, 1–3
10. अग्निपुराण 223, 4–6
11. अग्निपुराण 223, 7–8
12. अग्निपुराण 223, 13–16
13. अग्निपुराण 223, 17–18
14. अग्निपुराण 223, 19–21
15. अग्निपुराण 223, 22–24
16. अग्निपुराण 223, 25
17. अग्निपुराण 223, 26–27
18. अग्निपुराण 223, 28–30
19. अग्निपुराण 223, 31–34
20. अग्निपुराण 227, 1–3
21. अग्निपुराण 293–1
22. अग्निपुराण 239, 11–14
23. अग्निपुराण 239, 15–16